

20 जुलाई 1961

कमरा उस आशीष से परिपूर्ण हो उठा। इसके पश्चात जो कुछ घटित हुआ, उसे शब्दों में अभिव्यक्त कर पाना लगभग असंभव है; शब्द कितने निर्जीव होते हैं, उनका सुनिश्चित और तय अर्थ होता है और जो घटित हुआ, वह शब्दों तथा वर्णन की क्षमता से पूर्णतया परे था। यह समस्त सृष्टि का केंद्र था; यह एक पावनकारी गांभीर्य था, जिसने मस्तिष्क को हर विचार व हर भावना से मुक्त कर परिमार्जित कर दिया था। इसका यह गांभीर्य बिजली सा था जो नष्ट कर देती है, जलाकर भस्म कर देती है; इसकी गहनता को मापा जाना संभव न था, यह अचल, अभेद्य था, अविकंप और प्रत्यक्ष किंतु आकाश सा निर्भार। यह नेत्रों में था, श्वासों में था। जिन नेत्रों ने देखा, जिन्होंने अवलोकन किया, वे नेत्र स्थूल चक्षुओं से वैसे तो पूर्णतः भिन्न थे, तथापि वे थे वही। वहां बस देखना मात्र रह गया था, वे आंखें जो समय-आकाश से परे देख रही थीं। इसमें एक अभेद्य गरिमा थी और थी एक ऐसी शांति जो समस्त गतिशीलता का, समस्त कर्म का सार-स्वरूप तत्त्व है। इसे कोई पुण्य स्पर्श नहीं करता, क्योंकि यह समस्त पुण्य से और सभी मानवसम्मत निर्णयों से परे है। वहां केवल प्रेम था, जो अत्यंत भंगुर था, कोमल था, और इसलिए इसमें सभी सद्यःजात वस्तुओं जैसी सुकुमारता थी, आकस्मिक आघात से अपनी रक्षा न कर पाने की कोमलता, सुभेद्यता, भंगुरता थी, तथापि वह इन सबसे मुक्त था अतएव अविनाशी था, इसे कोई संज्ञा नहीं दी जा सकती थी, यह ज्ञान से अस्पर्शित था। इसे कोई विचार कभी न भेद सकता था; कोई कर्म इसे छू भी न सकता था। यह विशुद्ध था, स्पर्श से परे; और इसीलिए प्रति क्षण मर्त्य होते हुए सुंदर था।

यह सब मस्तिष्क को प्रभावित करता हुआ जान पड़ता था, अब यह पूर्व की तरह नहीं था (विचार कितनी सतही चीज़ होता है, आवश्यक, किंतु सतही)। इसकी विद्यमानता के कारण संबंध रूपांतरित हो गए से लगते थे। जैसे कोई भयानक झंझावत, कोई विनाशकारी भूकंप नदियों के रुख को बदल देता है, प्राकृतिक भूदृश्य को परिवर्तित कर देता है, धरती में गर्त निर्मित कर देता है, वैसे ही इसने विचार के रूपाकार को संतुलन दे दिया है, हृदय की रचना को बदल डाला है।

30 जुलाई, 1961

यह एक मेघाच्छन्न दिवस था, काले बादलों के भार से बोझिल; सुबह वृष्टि हुई थी और वातावरण में ठंडक आ गई थी। घूमने के पश्चात यद्यपि हम लोग बातें तो कर रहे थे, पर हमारा अधिक ध्यान धरती के सौंदर्य पर, मकानों पर तथा वृक्षों के गहरे रंगों की छटा पर था।

अप्रत्याशित रूप से अचानक उस अलभ्यप्राय शक्ति और दृढ़ता की एक चमक कौंधी जो कि शरीर को स्तब्ध कर देने वाली थी। देह मानो टिठक कर निश्चल हो गई हो, और अपने नेत्र बंद कर लेने पड़े, ताकि मूर्च्छा न आए। यह विभंजनकारी था, और ऐसा जान पड़ा जैसे वह सब कुछ जो वहां था, एकाएक अस्तित्वरहित हो गया हो। और उस शक्ति की अचलता ने तथा उसकी सहवर्ती विध्वंसात्मक ऊर्जा ने, वृष्टि तथा श्रवण शक्ति की सारी सीमितताओं को जलाकर भस्मसात् कर दिया था। यह कुछ ऐसा विराट था, जिसका वर्णन किया जाना असंभव है और जिसकी ऊंचाई तथा गहराई अनवगम्य है, उसे जाना नहीं जा सकता।

आज पौ फटने के साथ ही, सुबह-सवेरे, जब आकाश में एक भी मेघ न था, और हिमढके पर्वत बस आभासमान ही हुए थे कि अपने नेत्रों तथा कंठ में उस अभेद्य शक्ति की उपस्थिति के बोध से जाग गया; यह स्थिति कुछ ऐसी लग रही थी, जिसे छुआ जा सकता है, कुछ ऐसा, जिसका न होना कभी संभव ही न

हो। प्रायः एक घंटे तक यह विद्यमान रही और मस्तिष्क रिक्त रहा। यह ऐसा कुछ नहीं था जिसे विचार पकड़ ले और रोककर स्मृति में संचित कर ले, ताकि फिर कभी इसे स्मरण कर सके। यह तो बस विद्यमान था, और समस्त विचार मृत था। विचार क्रियाधर्मी होता है और उसी परिप्रेक्ष्य में इसका उपयोग भी है; विचार इसके बारे में नहीं सोच सकता क्योंकि विचार समय है; और यह तो समस्त काल तथा परिमाण के पार था। विचार, कामना इसके सातत्य अथवा पुनरावृत्ति हेतु प्रयास नहीं कर सकते, क्योंकि विचार व कामना तो सर्वथा अनुपस्थित थे। फिर यह क्या है जो इसे लिख लेने के लिए स्मरण रखता है? केवल यंत्रचालित अंकन, परंतु यह अंकन, यह शब्द वह वस्तु नहीं है।

18 अगस्त 1961

प्रायः रात्रि-भर वर्षा होती रही थी, जिसके फलस्वरूप टंड काफी बढ़ गई थी; ऊंची पहाड़ियों तथा पर्वतों पर ढेर सारी ताज़ा बर्फ जमा हो गई थी। और हवा में भी चुभन सी थी। हरे-भरे मैदान असाधारण रूप से उज्वल थे, और उनकी हरीतिमा चमत्कृत कर देने वाली थी। लगभग पूरे दिन पानी बरसता रहा था और तीसरे पहर के जाते-जाते आकाश खुलने लगा और सूर्य पर्वतों के मध्य दिखलाई देने लगा। हम एक ऐसे रास्ते पर चल रहे थे, जो कई गांवों से होकर गुज़रता था, जो फार्म हाउसों के बीच से मुड़ता-धूमता हुआ, हरे-भरे मैदानों से होकर जाता था। बिजली के उच्चशक्ति के तार ढोने वाले भीमकाय स्तंभ सांध्य आकाश की पृष्ठभूमि में चमत्कारी ढंग से खड़े थे। चपल मेघ और उनकी सन्निधि तक पहुंचती उत्तुंग लौह संरचनाएं, सुंदरता और शक्तिमत्ता का एक अद्भुत दृश्य प्रस्तुत कर रही थीं। लकड़ी के पुल पर से पार जाते हुए, इस सारी वृष्टि से उमड़ आई धारा अपने यौवन के चरम पर दिखलाई देती थी; यह एक ऐसी ऊर्जा और शक्ति के साथ तीव्र वेग से बहती जा रही थी, जो केवल पर्वत से निकलने वाली धाराओं में ही देखी जा सकती है। ऊपर तथा नीचे की ओर, पत्थरों और वृक्षों से भरे किनारों के बीच दृढ़तापूर्वक बंधी हुई उस धारा पर दृष्टि डालते समय, काल की गति का, अतीत, वर्तमान तथा भविष्य का पूरा भान था; पुल वर्तमान था और इस वर्तमान से ही होकर समस्त जीवन गतिमान तथा प्राणवान था, चिन्मय और चेतन था।

पर इस सबसे परे उस बारिश से धुली और कीचड़ सनी गली में वह अन्यतम, वह जगत विद्यमान था जिसे मानव विचार, उसकी गतिविधियां तथा उसकी अंतहीन वेदनाएं कभी स्पर्श तक नहीं कर सकतीं। यह जगत आशा अथवा विश्वास की उत्पत्ति न था। उस समय यद्यपि इस ओर पूर्ण एकाग्रता न थी, क्योंकि देखने, अनुभव करने तथा गंध लेने हेतु तब कितनी ही वस्तुएं वहां पर थीं; मेघ थे, पर्वतों के पार धूसर-नील आकाश था, और उसके मध्य स्थित सूर्य भी था; चमकदार मैदानों पर फैला सांध्य आलोक था तथा गोशालाओं एवं फार्म हाउसों के चारों ओर खिले लाल फूलों की गंध भी थी। इस अलौकिकता ने वहां पर इस सबको आवृत कर लिया था, कोई छोटी से छोटी वस्तु भी विस्मृत नहीं की गई थी; और शैया पर जाग्रत पड़े होने की इस अवस्था में, यह वृष्टि की तरह से उमड़ती हुई, मन और हृदय को परिव्याप्त करते हुए प्रविष्ट हुई। और इसके गहन सौंदर्य का, इसकी उत्कटता और प्रेम का स्पर्श बोध में उतरने लगा। यह प्रेम वह नहीं है, जिसे प्रतिमाओं में ढालकर मंदिरों में पूजा जाता है; यह प्रेम वह नहीं है जिसका प्रतीकों, चित्रों और शब्दों आदि के द्वारा आह्वान किया जाता है; यह प्रेम वह भी नहीं है जो ईर्ष्या और डाह के वेश में होता है; वरन् यह ऐसा प्रेम है, जो विचार तथा भावना से विमुक्त है, जो स्वतः संचालित स्वच्छंद गतिशीलता है। इसका सौंदर्य स्व-परित्याग के भावोद्रेक से युक्त होता है। यदि यह संयम से रहित हो, तो उस सौंदर्य में भावोद्रेक का अभाव रहेगा। संयम मन के क्षेत्र की कोई वस्तु नहीं होती, जिसे त्याग, दमन और अनुशासन के माध्यम से एकत्रित किया जा सके। इन सबका तो अनायास सहज रूप में पर्यवसान हो जाना आवश्यक है, क्योंकि उस अन्यतम के लिए इनका कोई प्रयोजन नहीं है। एक बाढ़ की तरह यह

अपनी अमित विपुलता के साथ भीतर बरस गया। इस प्रेम का न तो कहीं केंद्र था, और न परिधि थी और यह इतना परिपूर्ण, ऐसा अभेद्य था, कि इसमें कोई छाया तक विद्यमान न थी, जो इसे स्पर्श कर सकती हो; अतः यह सदैव मिटाया भी जा सकता था।

अपने अंतःकरण में भी हम सदा बाह्यपरक/बाह्यपरक दृष्टि का ही प्रयोग करते हैं; जानकारी से हम और अधिक जानकारी की दिशा में आगे बढ़ते हैं, सदैव इसकी वृद्धि करने में ही संलग्न रहते हैं; और यदि कभी जानकारी से मुक्ति का प्रयत्न भी किया जाता है तो वह भी पुनः वृद्धि का ही एक और नया प्रकार मात्र होता है। और हमारी चेतना हजार स्मृतियों तथा परिचयों-मान्यताओं से निर्मित है; इसमें थरथराती पत्ती के प्रति हमारी चेतना, फूल के प्रति, उस मनुष्य के हमारे समीप से गुजरने के प्रति, मैदान में दौड़ रहे उस बच्चे के प्रति, इसी प्रकार चट्टान के, निर्झर के, चटकीले लाल पुष्प तथा सुअरबाड़े की दुर्गंध के प्रति हमारी चेतना सभी संयुक्त है; हमारी चेतना इस सबका योग है। इस स्मरण तथा परिचय के आधार पर, इन बाहरी प्रत्युत्तरों के माध्यम से हम अपने अंतर्गत को, अपने गहनतर प्रयोजनों और बाध्यताओं को समझने का यत्न करने लगते हैं, हम मन की विस्तीर्ण गहनताओं में अधिक से अधिक गहरे जाकर खोजबीन करने लगते हैं। चुनौतियों और प्रत्युत्तरों को, प्रच्छन्न तथा प्रकट गतिविधियों को अनुभव करने तथा पहचानने की यह सारी प्रक्रिया ही समय में आबद्ध चेतना है।

प्याला केवल उसकी आकृति, रंग तथा विन्यास भर नहीं है, प्याले की रिक्तता भी इसमें समाविष्ट है। वह प्याला, एक रूप-विशेष में गृहीत शून्यता भी है; उस शून्यता के अभाव में न तो प्याला हो सकता है और न रूप हो सकता है। चेतना को हम बाह्य लक्षणों से जानते हैं, ऊंचाई तथा गहराई, विचार तथा भावना के संबंध में इसकी सीमितताओं के आधार पर जानते हैं। परंतु यह सब चेतना का बाहरी रूप है; बाह्य के माध्यम से हम आंतरिक का पता लगाना चाहते हैं। क्या यह संभव है? सिद्धांत तथा अनुमान-आश्रित चिंतन इस विषय में बिल्कुल महत्त्व नहीं रखते; वस्तुतः वे तो समस्त अन्वेषण को सर्वथा अवरुद्ध ही करते हैं। बहिरंग से हम आंतरिक का पता लगाना चाहते हैं, ज्ञात से हम अज्ञात का पता लगा लेने की आशा रखते हुए खोज-बीन करते हैं। क्या अंतरंग से बाह्य का अनुसंधान किया जाना संभव है? उस यंत्र को तो हम जानते हैं, जो बाह्य के माध्यम से अनुसंधान करता है, परंतु क्या ऐसा कोई साधन या उपकरण है, जो अज्ञात की सहायता से ज्ञात का अनुसंधान करता हो? क्या उसका अस्तित्व है भी? और ऐसे किसी यंत्र का अस्तित्व किस प्रकार हो सकता है? ऐसा यंत्र हो नहीं सकता। और मान लें कि ऐसा यंत्र है, तो उसे पहचाना जा सकेगा; वह परिचय के अंतर्गत अवश्य होगा, और यदि यह परिचय के अंतर्गत है तो ज्ञात की परिधि में, ज्ञात के दायरे के भीतर ही रहेगा।

उस अद्भुत धन्यता का आगमन उसकी अपनी चाह से होता है, पर प्रत्येक भेंट के साथ, अंतस् की गहराइयों में एक रूपांतरण भी घटित हो जाता है; यह फिर कभी पूर्ववत् नहीं रहता।

21 अगस्त 1961

आज भी फिर एक स्वच्छ धूप-भरा, लंबी-लंबी छायाओं और चमचमाती पत्तियों का दिन था; पर्वत शांत, सघन तथा निकट थे; आकाश का नीलवर्ण असाधारण था, निष्कलंक और मृदुल। छायाएं धरती पर सर्वत्र फैली हुई थीं, यह सुबह जैसे विशेष रूप से उनके ही लिए आई थी, छोटी-छोटी और बड़ी-बड़ी, लंबी-लंबी और दुबली-पतली छायाएं और स्थूलकाय, स्वस्थ और संतुष्ट छायाएं, सिमटी सी सीधी-सादी छायाएं, और उल्लास-उमंग भरी चंचल, नटखट और शैतान छायाएं। फार्म हाउसों तथा पर्वतीय आवासों की नई पुरानी छतें पालिशदार संगमरमर की तरह चमचमा रही थीं। ऐसा लग रहा था मानो वृक्ष और मैदान आनंदोत्सव

मना रहे हों और शोरगुल कर रहे हों; उनका अस्तित्व एक दूसरे के लिए था और उनके ऊपर स्वर्ग था, वह मानव निर्मित नहीं था, जहां यातनाएं और आशाएं हुआ करती हैं। और सभी दिशाओं में जीवन का विस्तार था, अपार, विराट, वैभवशाली और स्पंदित प्राण यह जीवन ही था, चिरयुवा और सदैव चुनौतियों से भरा जीवन, जो कभी ठहरता नहीं, जो सारी धरती पर निःसंग भाव से विचरता रहता है, कभी कहीं भी अपना निशान नहीं छोड़ता, न कभी कुछ मांगता और न किसी के लिए प्रतीकारत। यह वहां पर प्रचुरतापूर्वक विद्यमान था, बिंबरहित और मृत्यु से अतीत, अमर; इसे इसकी परवाह न थी कि इसका आगमन कहां से हुआ है और गंतव्य कहां, किस दिशा में है। जहां यह था, वहीं जीवन था, काल और विचार से नितांत परे। यह अद्भुत था, मुक्त, निर्भार, और अथाह। इसे रोककर बंदी नहीं बनाया जा सकता था, जहां कहीं भी इसे बंदी बनाया गया, फिर चाहे वह पूजागृह हो, बाजार हो, घर हो, कहीं भी क्यों न हो, वहीं पर पतन, भ्रष्टता और उनसे संबद्ध अंतहीन सुधार अस्तित्व में आने लगे। यहां यह सहजतापूर्वक विद्यमान था, तेजस्वी और प्रलयंकर, और विचारातीत तथा भावनातीत है इसका सौंदर्य। यह इतना व्यापक और अतुलनीय है कि धरती और आकाश में सर्वत्र व्याप्त है, घास के उस तिनके में भी, जिसे शीघ्रता से मिटाया जा सकता है। यह विद्यमान है, प्रेम और मृत्यु सहित।

वन में शीतलता थी, जहां कुछ ही फुट नीचे एक जलधारा ऊंचे स्वरो में पुकार रही थी; चीड़ वृक्ष धरती पर एक दृष्टि तक न डालते हुए, तीव्र वेग से आकाश की ओर मानो उसे छूने जा रहे थे। वृक्षों में उगने वाली खुंबियों को खाती हुई काली गिलहरियां वृक्षों पर संकीर्ण वर्तुलों में घूमते हुए एक-दूसरे का पीछा कर रही थीं; आसपास का सारा परिवेश अत्यंत मोहक था, अद्भुत रूप से लुभावना था; एक छोटी सी फुर्तीली चिड़िया संभवतः रॉबिन या उस जैसी ही दूसरी कोई उड़कर तेजी से ऊपर जा रही थी और पुनः नीचे हवा में ही गोता लगा रही थी। ठंडी पर्वतीय जलराशि की उस धारा के सिवा वहां बस शीतलता और निःस्तब्धता का ही साम्राज्य था। और था प्रेम, सर्जन तथा संहार, किसी प्रतीक की तरह नहीं, विचारगत और भावनापरक नहीं, वरन् एक वास्तविक यथार्थ की तरह। आप इसे देख नहीं सकते थे, इसका संवेदन नहीं कर सकते थे, पर वहां यह था, प्रबल विस्तार सहित, दस सहस्र के समान शक्तिशाली एवम् सर्वाधिक नमनीय की दृढ़ता सहित। यह विद्यमान था, और सब कुछ स्तब्ध हो उठा, ठिठक कर निश्चल हो गया, मस्तिष्क और देह भी। यह एक अनुग्रह था, और मन इससे अभिन्न था।

गहनता की कोई सीमा नहीं होती; इसका सार-तत्त्व काल तथा आकाश से रहित है। इसे अनुभव नहीं किया जाता; अनुभव तो अत्यंत नकली, चमक-भरी सस्ती वस्तु है, आसानी से मिलने तथा खो जाने वाली; विचार इसे संयोजित नहीं कर सकता और न भावना इस तक पहुंच सकती है। ये मूढ़तापूर्ण और अपरिपक्व बातें हैं। परिपक्वता का समय से कोई संबंध नहीं होता, यह आयु से संबंधित नहीं है, और न यह प्रभावों और परिवेश के द्वारा, वातावरण के द्वारा लायी जा सकती है। इसे खरीदा नहीं जाता, पुस्तकें, शिक्षक अथवा एक या अनेक उद्धारकर्ता इस परिपक्वता के लिए अनुकूल परिवेश निर्मित नहीं कर सकते। परिपक्वता स्वयं अपने आपमें कोई लक्ष्य नहीं है; यह विचार के द्वारा संवर्धित नहीं की जाती, उसके बिना स्वयं ही अस्तित्व में आती है, चुपचाप ध्यान के आयोजन बिना, अज्ञात रूप से। इस परिपक्वता का होना आवश्यक है, इस प्रौढ़ता का जीवन में घटित होना आवश्यक है; वह प्रौढ़ता नहीं जो व्याधि और अराजकता से, विषाद और आशा से स्वयमेव आ जाती है। हताशा तथा कष्ट इस सर्वांगीण परिपक्वता को अस्तित्व में नहीं ला सकते, इसे तो अनायास ही आना होता है।

क्योंकि इस सर्वांगीण परिपक्वता में ही संयम-तप का वास है, भस्मी रमाने और टाट लपेटने वाला संयम नहीं, वरन् संसार की वस्तुओं, इसके सद्गुणों, भगवानों, प्रतिष्ठाओं, आशाओं तथा मूल्यों के प्रति सहज

स्वाभाविक और अनायोजित उदासीनता। एकाकीपन से फलित होने वाले इस संयम हेतु इन सबका पूर्णरूपेण निषेध आवश्यक है। इस एकाकीपन को समाज अथवा संस्कृति का कोई प्रभाव कभी स्पर्श तक नहीं कर सकता। पर यह सहज रूप से ही हो, समय और प्रभाव की संतति न हो, मस्तिष्क से उत्पन्न होने वाली कोई काल्पनिक रचना न हो। मेघ-गर्जन की तरह इसका आगमन हो; इसका उद्गम कहां है यह जान सकना संभव न हो। और इसके अभाव में पूर्ण परिपक्वता नहीं आ पाती। एक अकेलापन वह होता है जो आत्मदया व आत्मरक्षा का सार होता है, जो किसी मिथक में, जानकारी में और धारणा आदि के रूप में बंधकर जीवन से अलगाव का ही सारभूत रूप होता है, और यह अकेलापन एकाकी होने से एकदम अलग बात है; अकेलेपन में तो पुनः जुड़ने और पुनः विलग होते रहने का अनवरत प्रयास सदा के लिए बना ही रहता है। पर एकाकीपन जीवन का वह रूप है, जिसमें सभी प्रभावों की इति हो चुकी है। यही एकाकीपन संयमित जीवन का सार-सर्वस्व है।

22 अगस्त 1961

वातावरण में उस असह्य तेजस्विता की प्रखर और प्रभावी उपस्थिति थी। यह कपोल कल्पना न थी; जहां यथार्थ है, वहां कल्पना खो जाती है; कल्पना संकटकारी होती है, इसकी कोई प्रामाणिकता नहीं होती, केवल तथ्य ही प्रामाणिक होता है। मन के सपने और कल्पना सुखदायी और छल-भरे हैं, और उनका पूर्णरूपेण निरसन कर दिया जाना आवश्यक है। हर प्रकार के मिथकों, मनस्तरंगों और कल्पनाओं को समझ लिया जाना आवश्यक है, और उनकी यही समझ उनमें प्रतीत हो रही सार्थकता से उन्हें वंचित कर देती है। यह विद्यमान था, और ध्यान के रूप में जो प्रारंभ हुआ था, उसकी समाप्ति हो चुकी थी। जब यथार्थ प्रत्यक्ष हो, तो ध्यान का क्या अर्थ रह जाता है! यथार्थ की विद्यमानता, ध्यान का परिणाम कदापि नहीं थी, कोई भी बात इसके प्रकटन का कारण नहीं हो सकती; ध्यान के होते हुए भी यह विद्यमान था, परंतु आवश्यक था एक अत्यंत संवेदनशील, सतर्क मस्तिष्क जिसने पूरी तरह से, स्वेच्छा से और अनायास, अपनी तार्किक और अतार्किक बड़बड़ बंद कर दी हो। यह एकदम मौन हो गया था, कोई व्याख्या, कोई वर्गीकरण न करते हुए यह बस देख रहा था और सुन रहा था; यह चुप था व और कोई ऐसी सत्ता या आवश्यकता नहीं थी, जो इसे चुप कर रही हो। मस्तिष्क पूर्णतः निश्चल और अतीव चैतन्य था। उस अगाधता ने रात्रि को स्वयं से आपूरित कर दिया और आनंद सघन हो उठा।

यह संबंधित किसी से भी नहीं था; यह किसी को आकार देने, किसी में परिवर्तन लाने, या किसी भी आग्रह को व्यक्त करने का कोई प्रयत्न नहीं कर रहा था; यह प्रभाव से विरहित था, और इसीलिए अदम्य था। यह कल्याण करने के कार्य में नहीं लगा था, सुधार नहीं ला रहा था; यह प्रतिष्ठा-प्राप्ति में रत नहीं था, अतएव अमित संहारक था। किंतु यह प्रेम था, वैसा प्रेम नहीं जिसे समाज संवर्धित करता है, जो एक उत्पीड़ित स्थिति है। यह तो जीवन, प्रवाह का सार-तत्त्व ही था। यह विद्यमान था, अदमनीय, संहारकारी और इसमें एक ऐसी कोमलता भी थी जिसे केवल अभिनव ही जानता है, जैसे वसंत ऋतु की वह नयी पत्ती; वह आपको बता देगी। और एक सुदृढ़ता थी जो परिमाण से परे थी, तथा वह शक्ति भी जो केवल सर्जन में हुआ करती है। सब कुछ चुप था। वह एक तारा जो पहाड़ से थोड़ा ही ऊंचा दिख रहा था, अब बहुत ऊपर तक आरोहण कर चुका था, और अपने एकांत में तेजोदीप्त था।

‘कृष्णमूर्ति नोटबुक’